International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 376-377

एक साहित्यिक की डायरी की अर्न्तवस्तु

मुकेश कुमार यादव
शोधछात्र–हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध के रचना कर्म का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जिसमें 1950 से लेकर 1963–64 तक की प्रविष्टियां मिलती है। एक साहित्यिक की डायरी मुख्यतः साहित्य चिन्तन और रचना प्रक्रिया पर केन्द्रित है। जिसमें मुक्तिबोध ने प्रायः संवाद की शैली में अपने ज्ञान सिद्धान्त, रचना प्रक्रिया, कला के मानदण्ड आलोचना की कसौटी तथा युगीन साहित्यिक परिस्थिति और उससे सम्बन्धित विमर्शों पर वाद–विवाद की शैली में विचार–विमर्श किया है। डायरी को पढ़ते हुए हम मुक्तिबोध की अनेक कविताओं, कहानियों व आलोचनात्मक लेखों के अन्तः सूत्र प्राप्त कर सकते हैं। मुक्तिबोध ने जिन बातों को दूसरी विधाओं में उनकी प्रकृति के अनुरूप लिखा है, वही अनौपचारिक शैली में प्रायः किसी घटनाक्रम, किसी परिस्थिति या व्यक्ति के सहारे इस डायरी में कहा है।

मुक्तिबोध अपने निबन्ध 'युगीन घटनाक्रम व साहित्य सृजन' में प्रस्तावित करते हैं कि ''वर्ग विभाजन समाज में व्यक्ति का मन भी विभाजित होता है चाहे वह इसे स्वीकार करे या न करे''। मुक्तिबोध यह मानते हैं कि कोई भी रचनाकार अपने व्यक्तित्व का विभाजन तभी दूर कर सकता है जब वह ''युगान्तरकारी घटनाओं की प्रक्रिया में व्यक्तिगत रूप से भाग लेकर उन अनुभवों की संवेदना ग्रन्थि को धारण करते हुए साहित्य में उसे खोल दे''[1]। यह टिप्पणी 1950 की है जो उनके आगे के रचनात्मक संघर्षों का आभाष देती है।

1954 में लिखी टिप्पणी ''व्यक्तित्व व चेतना'' में वे कवियों और आलोचकों के पूर्वाग्रहों या अभिरूचि दोष पर विचार करते हुए उसे चमत्कारवाद व अनगढ़पन का कारण मानते हैं। इस अभिरूचि दोष के चलते जहां आलोचक नवीन काव्य प्रतीकों ध्वनियों व इशारों को समझने से इंकार करते हैं, वहीं कवि एक दोहरा जीवन जीते हुए चमत्कारवाद का शिकार होते हैं। उनकी कविता व व्यक्तित्व के बीच दरार होती है। इस विचार क्रम में निष्कर्ष रूप में मुक्तिबोध ने अपने समय की कविता पर महत्वपूर्ण टिप्पणी की। वे लिखते हैं कि '' काव्य में प्रकट उनके व्यक्तित्व में मानवीयता का स्पर्श अल्प होता है। उसमें किसी भव्य रूप के दर्शन भी नहीं होते जो हमारे सामान्य–जनों की भव्य मानवीयता में हमें दिखायी देते हैं। आध्यात्मिक टूटपुँजियापन आज की कविता का महत्वपूर्ण लक्ष्य है।''[2]

1995 में लिखी टिप्पणी 'करूणा व यथार्थ' में वे करूणा का चित्रण व करूणा के प्रभाव की चर्चा करते हुए छायावादी कविता में 'आंसू' की नाजुक ख्याली को वास्तविक करूणा से अलग करते है। जबकि साकेत के अष्टम सर्ग में कैकेयी का अनुपात तथा 'सियाराम शरण गुप्त' की कविता 'एक फूल दो लाकर' तथा सुभद्रा कुमारी चौहान की कुछ कविताओं का उदाहरण देकर उन्हें वास्तविक करूणा का नमूना बताया है। उनकी निगाह में कर्मोत्पादक कविता नाजुकखयाली से उच्चतर है, भले ही वह रम्य व भव्य क्यों न हो– ''किन्तु, साधारणतः हिन्दी में आंसू की नाजुकखयाली है, न कि वास्तविक करूणा। फिर भी महत्व की दृष्टि से यह नाजुकखयाली ही ज्यादा पसन्द की गयी, और आज भी पसन्दगी के खयाल से उसी का बोलबाला है।''[3]

1955 में 'कल्चरल फ्रीडम' नामक शीर्षक से टिप्पणी लिखी। ज्ञातव्य है कि कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम, शीत युद्ध के दौरान सोवियत संघ व समाजवादी व्यवस्था के विरोध में अमेरिका द्वारा सम्पोषित, अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक प्लेटफार्म था। इसमें समाजवादी व्यवस्था के कथित सर्वसत्तावाद के विरूद्ध व्यक्तिगत स्वाधीनता को साहित्य व कलाओं का प्राण बताया जाता था। इस टिप्पणी में मुक्तिबोध ने भारत स्थित कांग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम के उस प्रस्ताव पर व्यंग्य किया है जिसमें बोलगानिन खुश्च्यु आदि रूसी अतिथियों का स्वागत करने गये बच्चों पर चिन्ता जताते हुए यह कहा गया था कि यह बच्चों का शोषण है।

मुक्तिबोध कहते है कि बच्चों को उनके माता–पिता व उनकी शिक्षण संस्थाओं ने ही स्वागत के लिए भेजा था। क्या उनके माता–पिता या उनकी शिक्षण संस्थाएँ ही उनका शोषण कर रही है। बच्चों की सांस्कृतिक, राजनैतिक स्वाधीनता के इन पैरोकारों के सामने वे भारत के बच्चों की वास्तविक दुर्दशा का यथार्थ सामने रखते है। ''इस तथाकथित कांग्रेस का यह ख्याल बहुत ऊंचा है। ऊंचा इसलिए है कि भारतीय बालकों की दुर्दशा की ओर उसका ध्यान नहीं गया। शिक्षा की मंहगाई के कारण उन्हें पूरी तालीम नहीं मिल पाती या आर्थिक अभाव के फलस्वरूप शिक्षा न मिलने के कारण वे सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए रहते हैं। इस बात की ओर उनका ध्यान नहीं गया। उनका इस तथ्य की ओर भी ध्यान नहीं गया कि हजारों बालक होटलों में कारखानों में काम करते फिरते है। और उनका आर्थिक उत्पीड़न होता रहता है। इस उत्पीड़न के विरूद्ध इस कांग्रेस ने दो शब्द भी खर्च नहीं किये।''[4]

मुक्तिबोध की डायरी प्रधानतः संवादात्मक है। प्रायः किसी घटना या विचार को लेकर दो व्यक्तियों में बहस होती है जो पक्ष–प्रतिपक्ष का निर्माण करते हुए किसी महत्वपूर्ण समझ तक पहुंचते हैं।

'डबरे पर सूरज का बिम्ब' शीर्षक प्रविष्टि निम्न मध्यवर्गीय साहित्यकारों की रचनाशीलता का एक बिम्ब है। जो यह बताता है कि एक कष्टमय और मानसिक ऊहापोह में जीवन जीते हुए ये सभी ऐसे डबरे हैं जो अपने भीतर सूरज का उदाहरण लिये हैं अर्थात उनके धुसर व्यक्तित्व व काव्यमय जीवन में भी व्यापक जीवन जगत के सत्य प्रतिबिम्बित हो सकते है।

मुक्तिबोध ने बार–बार साहित्यिक कर्म करने वालों के लिए भी सिद्धान्त व्यवहार की एकता को जरूरी माना है। यदि ऐसा नहीं है तो साहित्य बड़ा नहीं हो सकता किन्तु साहित्य में अभिव्यक्त भावनाओं की जीवन के साथ सामन्जस्य व संगति महज यांत्रिक नहीं हो सकती। भावानुभूति की वस्तुनिष्ठता और सही विश्व दृष्टि ही एक बेहतर साहित्य पैदा कर सकती है।

मुक्तिबोध ने साहित्यिक की डायरी में 'तीसरा क्षण' तथा 'कला का तीसरा क्षण' शीर्षक से लम्बी टिप्पणियां की हैं। जो उनके द्वारा प्रतिपादित रचना प्रक्रिया को सामने रखती है। उनके अनुसार कला का पहला क्षण वह होता है जिसमें कोई विशिष्ट व उत्कट भावानुभूति रचनाकार के मन पर ऐसा संघात करती है कि वह उसे अभिव्यक्त करने को विवश होता है। इस पहले क्षण की अनुभूति का पक्ष प्रधान होने पर भी अनुभव के प्रति तटस्थता गौण रूप में विद्यमान रहती है। दोनों पक्षों का द्वन्द इस प्रथम क्षण में ही घटित होता है इस प्रथम क्षण में रचनाकार प्रधानतः भोक्ता है, गौणतः द्रष्टा भी होता है।

दूसरे क्षण में यह भावद्रव्य रचनाकार के पहले के तमाम अनुभवों, विचारों और जीवन दृष्टि के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए उसके मन की आंखों के सामने फैटेंसी की तरह विस्तार पाता है। यहां द्रष्टा मत प्रधान हो उठता है और भोक्ता मन गौण। कला के इस दूसरे क्षण में अनुभूति आन्तरिक वस्तु तथ्यों में बदलती है और फैटेंसी की तरह विस्तृत होती है। कला की तीसरा क्षण वह होता है जब आन्तरिक वस्तु–तत्व बाहरी अभिव्यक्ति के माध्यम से ढल कर रचना का रूप धारण करता है।

''कला का पहला क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव–क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते–दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना, और एक ऐसी फैण्टेसी का रूप धारण कर लेना, मानों वह फैण्टेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है, इस फैण्टेसी के शब्द–बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता। शब्द–बद्ध होने की प्रक्रिया के भीतर जो प्रवाह बहता रहता है वह समस्त व्यक्तित्व और जीवन का प्रवाह होता है। प्रवाह में वह फैण्टेसी अनवरत रूप से विकसित परिवर्तित होती हुई आगे बढ़ती जाती है। इस प्रकार वह फैण्टेसी अपने मूल रूप को बहुत कुछ त्यागती हुई नवीन रूप धारण करती है। जिस फैण्टेसी को शब्द–बद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है वह फैण्टेसी अपने मूल रूप से इतनी अधिक दूर चली जाती है कि यह कहना कठिन है कि फैण्टेसी का यह नया रूप अपने मूल रूप की प्रतिकृति है। फैण्टेसी को शब्द–बद्ध करने की प्रक्रिया के दौरान जो–जो सृजन होता है–जिसके कारण कृति क्रमशः विकसित होती जाती है–वही कला का तीसरा और अन्तिम क्षण है।''[5]

मुक्तिबोध ने बहुधा नयी कविता के बारे में तैयार किये गये मानदण्डों के साथ अपनी डायरी में बहस की। वे बार–बार कलाकार के वैयक्तिक वैशिष्ट्य, व्यक्तिगत ईमानदारी, अद्वितीयता आदि के विषय में गम्भीर विमर्श करते हुए नयी कविता के आत्मसंघर्ष का एक पक्ष बन जाते हैं। वे मानते है कि एक वर्ग विभाजित समाज में व्यक्तियों का एक दूसरे से अलगाव व अकेलापन एक तथ्य है, दूसरी ओर कलाकार का जीवन मनोमय होने के चलते उसे ऐसे एकांत की जरूरत भी होती है जो सोचने–विचारने के लिए आवश्यक होता है। किन्तु नयी कविता में जिस वैयक्तिक विशिष्टता व अद्वितीयता पर जोर दिया गया उसे उन्होने भद्ररूप द्वारा खुद को आम जनता से अलग व ऊपर समझने का, प्रतिबद्ध न रहकर तटस्थ रहने का एक अभिजात विचार करार दिया। वे मानते हैं कि नयी कविता ऐसे लोगों की कविता है जो कि मिसफिट हैं। जो न आत्म सामंजस्य स्थापित कर सकते हैं, न वाह्य सामंजस्य लेकिन यह सिर्फ स्थिति नही है बल्कि कई बार एक सैद्धान्तिक रूप ग्रहण करके अद्वितीयता व विशिष्टता अन्तर्मुखता व संघर्षहीनता का कवच बन जाती है। नयी कविता के भीतरी संघर्ष को प्रस्तुत करते हुए मुक्तिबोध लगातार कवि और आलोचकों दोनों से यह अपेक्षा रखते हैं कि वे अपने व दूसरों के लिए गलतियों का एक मार्जिन छोड़ दें। ताकि आत्म संघर्ष के उपरान्त सही परिणति तक पहुंचने की गुंजाईश बनी रहे।

'सौन्दर्य प्रतीति की प्रक्रिया' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने नयी कविता के पूरे सामाजिक व वैचारिक परिप्रेक्ष्य पर विचार करते हुए लिखा है कि ''पृथकता व सामंजस्य, तटस्थता व तल्लीनता, प्रवाहिता स्थिति व गति की यह जोड़ी वस्तुतः दो विरोधी बातें हैं। किन्तु यह दोनों विरोधी बातें दिक् व काल की भांति एक ही क्षण की दो बाजुएं हैं, दो पक्ष हैं। ऐसा क्यों न माना जाये? जिस क्षण में ये दोनों बाते सध जाती हैं वही कलात्मक क्षण है।''[6]

निष्कर्षतः साहित्यिक की डायरी में उन्होंने भारत के उच्चतर वर्गों का साम्राज्यवादी विचारधाराओं से सम्बन्ध, समाज का सहजबोध व बुद्विजीवियों की चेतना पर उनका असर और अन्ततः साहित्य की वैचारिकी पर उसके घातक असर की समीक्षा की है। एक साहित्यिक की डायरी मुक्तिबोध के जीवन व साहित्य सम्बन्धी परिपक्व व गहरे चिन्तन की अभिव्यक्ति है। जो उनके अपने रचनात्मक संघर्ष, काव्य व आलोचना की कसौटियों, रचना प्रक्रिया की जटिलताओं तथा भारतीय समाज में बुद्विजीवियों की भूमिका को समझने में भारी मदद करती है। एक साहित्यिक की डायरी का हिन्दी साहित्य चिन्तन में कालजयी महत्व है।

सन्दर्भ

1. मुक्तिबोध रचनावली (भाग–4) सम्पादक–नेमिचन्द्र जैन, पृ0सं0 16
2. वही, पृष्ठ सं0 21
3. वही, पृष्ठ सं0 21
4. वही, पृष्ठ सं0 23
5. वही, पृष्ठ सं0 85
6. वही, पृष्ठ सं0 134